International Multidisciplinary Journal Metainnovate – IMJM is an official

publication of YBN University, Rajaulatu Village, Namkum, Ranchi, Jharkhand

843010, India. It is published quarterly - March, June, September, and December.

www.metainnovateybnujournal.com

Volume 1, Issue 3, Jul - Sep 2025

झारखण्ड के जनजातीय समाज में चित्रकला एवं लोकगीतों का महत्व

मिनाक्षी कमारी रवि

पीएच.डी. (आर.जी.एन.एफ)

शोध छात्रा

स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग राँची विश्वविद्यालय राँची

परिचय :- भारतीय परम्परा के अनुसार कला उन सारी क्रियाओं को कहते हैं जिनमें कौशल अपेक्षित हो। यूरोपीय शास्त्रियों ने भी कला में कौशल को महत्वपूर्ण माना है। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। कला मानव संस्कृति की उपज हैं इसका उदय मानव की सौन्दर्य भावना का परिचायक है।

सीधे शब्दों में कहें तो आम तौर पर मानव द्वारा उसकी मस्तिष्क में चल रही हजारों प्रकार की कल्पनाओं को अन्य सभी भाई बन्धुओं के सामने दिखने की क्रिया को ही कला या आर्ट कहते है। कला उस क्षितिज की भांति है जिसका कोई छोर नहीं इतनी विशाल इतनी विस्तृत अनेक विधाओं को अपने में समेटे तभी तो कवि मन कह उठा-

साहित्य संगीत कला विहीन : साक्षात

पशुः पुच्छ विषणहीन: ।।

रविन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार कला में मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है।"

प्लेटो ने कहा - "कला सत्य की अनुकृति के अनुकृति है।"

टालस्टाय के अनुसार "अपने भावों की क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्ति करना की उसे देखने या सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए कला है।

झारखण्ड जनजातीय कला, शिल्प व संगीत का विपुल भंडार है। इस राज्य में जनजातीय साहित्य, दर्शन, संगीत, हस्तकला, ललितकला, चित्रकला के साथ साथ लोक संस्कृति के विविध रूपों को उदभव तथा विकास हुआ है। जनजातियों की यह सरल तथा सहज कला अनेक दैनिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग होती है। झारखण्ड की जनजातियों अपनी आर्थिक विपन्नता के बावजुद कलाकृतियों की इतनी धनी है, जिसकी समता करना दूसरों के लिए बबूल के गोंद मिलाये जाते है। चित्रकारी के लिए बनाया जाने वाला यह पट पांच से बीस फीट तक लंबा और डेढ दो फीट चौडा होता है। इस पटट पर सुंदर चित्र उकेरकर लोगो के बीच प्रदर्शित किया जाता है इसमें कई चित्र को संयोजन होता है। चित्रों में बॉर्डर को भी प्रयोग होता है। चित्रकला का विषय सिद्धू कान्हू, तिलका मांझी, बिरसा मुण्डा जैसे शहीदों की शौर्य गाथा के अलावा रामायण, महाभारत, कृष्णलीला आदि से लिया जाता है। इस चित्र को उकेरने के लिए लाल, पीला, हरा, काला, नीला आदि रंगों को

प्रयोग किया जाता है। खास बात यह है कि ये रंग प्राकृतिक होते है हरे रंग के लिए सेम के पत्ते, काले रंग के लिए कोयले की राख, पीले रंग के लिए हल्दी, सफेदरंग के लिए पीसा हुआ चावल आदि का प्रयोग किया जाता है। रंगों को भरने के लिए बकरी के बाल से बनी कूची या फिर चिडिया के पंखों का प्रयोग करने की परंपरा है। चित्रित विषय को प्रस्तुति कथ या गीत के रूप में लयबद्ध करके की जाती है। इसे इस समाज का पुश्तैनी पेशा कहा जा सकता है। वर्षों से ये चित्रकार वंश परंपरा के आधार पर इसे अपनाते है। यह कला वर्तमान पीढ़ी को पिछली पीढी से विरासत में मिलती आयी है परंतु बिडबना है कि लोक चित्रकला के माध्यम से गांव गांव घूमकर लोगों को मनोरंजन करने वाले ये चित्रकार (जादो) अब दूसरा पेशा अपना रहे है। जादोपटिया का क्रेज कम होता जा रहा है। यह लोक कला विलुपित के कगार पर है। हांलाकि लुप्त हो रहे इस लोक कला को संजोने व विकसित करने के दिशा में सरकार भी कुछ कदम, उठा रही है। पिछले दिनों हरियाणा के सुरजकुंड मेले में झारखण्ड को थीम स्टेट बनाया गया था। जहाँ जादोपटिया को प्रदर्शित करने का काम किया। मुबई में कपडे, बेडशीट, चादर, साडी, पर्दा आदि पर आधुनिक जादोपटिया चित्रकारी की जा रही है। झारक्राफ्ट के माध्यम से इसे बेचा भी जा रहा है। अतिथियों को उपहार देने में भी इसका प्रयोग किया जा रहा है। हांलाकि आधुनिक समय में इसमें काफी बदलाव आये है। अब प्राकृतिक रंगों का प्रयोग नहीं होता और चित्रकार घर घर जाकर इसका प्रदर्शन भी बहुत कम करते है। नये दौर में यह मनोरंजन और जानकारी का साधन तो नही रहा पर इसे व्यावसायिक रूप देने का प्रयास सरकार व कुछ कद्र दोनों द्वारा किया जा रहा है।

सोहराई तथा कोहबर चित्रकला संदियों से हजारीबाग जिला के बड़कागांव प्रखण्ड के बादाम क्षेत्र में यह कला प्रचलित रहा है। इस क्षेत्र को जनजातीय तथा गैर जनजातिय महिलायें अपने घर के दीवारों पर इसका प्रयोग करती है। इस चित्रों में वन्य पशु-पक्षी, मानव आकृति धार्मिक प्रतीक, चित्र लिपि के कुछ निदर्श इत्यादि रेड लैटेराईट पत्थरों से उकेरे गये है।

सोहराई कला में किसी कृत्रिम रंग का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसमें स्थानीय तौर पर पाये जाने वाली सफेद मिटटी, काली मिटटी तथा गोबर का उपयोग किया जाता है। इस कला के अन्तर्गत ब्रश के स्थान पर कंधी का प्रयोग किया जाता है। सोहराई कला मुख्य रूप से दीपावली के अवसर पर उकेरी जाती है, क्योंकि दीपावली से काली पूजन तक इस क्षेत्र के लोगों द्वारा सोहराई पर्व मानये जाने की प्रथा है।

कोहबर कला का भी सोहराई कला के साथ साथ हजारीबाग के बादम क्षेत्र में प्रयोग किया जाता है। कोहवर कला का प्रायः विवाहोत्सव के अवसर पर प्रयोग किया जाता है चूंकि विवाह से वंश वृद्धि होती है। जहां भी सोहराई कला तथा कोहवर कला की चित्रकारी की जाती वहां स्पष्ट रूप से वृद्धि देखी जाती है।

पुरातन लिपि जो बाद की गुफाओं में अंकित है, जिसके आधार पर यह कलाकृति विकसित हुई है, उसे अभी तक भली भांति पढा नहीं जा सकता है। इस्को पहाडियों की गुफायें इतनी लम्बी है, कि अभी तक कोई व्यक्ति इसके अंतिम छोर तक पहुंच नहीं पाया है। इस कला में प्रयुक्त गोबर ईश गणेश के प्रतीक के रूप में माना जाता है। गणेश के साथ लक्ष्मी की पूजा धन प्राप्ति के लिए शुभ माना जाता है। यदि सोहराई तथा कोहवर कला को समुचित ढंग से प्रोत्साहित किया जाय तो यह मधुबनी पेटिंग की भांति विश्वविख्यात हो सकती है।

पैतकर रंगचित्र: झारखण्ड के पूर्वी सिंहभूम जिला के पैतकर समुदाय द्वारा यह रंगचित्र

तैयारकिये जाते है। यह भारत के प्राचीनतम आदिम चित्रकारियों में से एक है। इसे कुंडलित चित्रकारी भी कहा जाता है। इसका स्वरूप तथा आविर्भाव सामान्य मृत्यु के बाद के जीवन के प्रकरण (विषय-वस्तु) को प्रदर्शित करता है। पैतकर चित्रकला कुछ अर्थ में जादो पटिया चित्रकला के साथ समानता रखता हुआ प्रतीत होता है। यहां हाल में ही किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो वहां पैतकर समूदाय के लोग घूमते हुए आते है। कपडे या कागज पर वनस्पति रंगों से कम्पमान रेखायें खींची जाती है, जो काल्पनिक मूर्तिसमूह को सृजित करती है। इसके कलाकार कपडे का कागज पर सिन्दूर तथा प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करता है। सुईया बकरे के बाल की सहायता से चित्र बनाये जाते है। कागज को चिपकाकर (जोडकर) लम्बे फलक (चादर) पर जो प्रायः 8 से 20 पृलक ढांचे में होता है, में कई चित्रकारियां बनायी जाती है। इन दिनों यह अम्बादुबी तथा धालधुम गढ के कला मंदिर द्वारा उत्पादित किये जा रहे है। झारखण्ड का पैतकर चित्रकला आज संक्रमण के दौर में है, जिसे प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है।

गोदना चित्र गोदना झारखण्ड की जनजातियों के बीच अनन्त काल से प्रचलित रहा है।

विशेषकर जनजातीय बालयें तथा महिलायें अपने ललाट, गला, छाती, बांह, हाथ पैर इत्यादि में आभूषण, फूल, पक्षी, पेड-पौधे, जानवर, गोत्र चिन्ह इत्यादि के गोदना गोदवाती रही हैं। गला एवं छाती पर आभूषणों के चित्र गोदवाने की परम्परा रही है, जिसके द्वारा शरीर को अलंकृत किया जाता है। हाथ में प्रायः धार्मिक चित्र गोदे जाते है, जिससे कुछ देवता प्रसन्न होते है तथा रक्षा तथा सुख समृद्धि की राह दिखाते है। संथाली बालायें युवावस्था में पदार्पण करने के समय आझाइन या खोदनी द्वारा अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के चित्र गोदना के रूप में अंकित कराती है। गोदना जनजातीय महिलाओं के शरीर पर श्रृंगार तथा धर्म आस्था की दृष्टि में गोदा जाता है। झारखण्ड के

जनजातीय समाज में गोदा के सन्दर्भ में यह विश्वास पाया जाता है कि शरीर को गोदने से गुदे गये जगह पर किसी प्रकार का रोग या घाव नहीं होता है। संथाल लडकों के शरीर पर सिखा गोदने का भी रिवाज रहा है। शरीर पर गोदना या सिखा रहने पर लडकी तथा लडका का गोत्र पर उन गोत्र की पहचान भी होती है। जनजातीय महिलाएं गोदाना को ही अपना गहना मानती है। गोदना गुदवाने का मुख्य कारण महिला की सहनशक्ति को बढाना है जिससे प्रसववेदना को सहन करना आसान हो जाता है। गोदना गोदने के पूर्व विभिन्न पेड पौधे की पतियों, फल, फूल तथा छाल से लेप तैयार किया जाता है चित्र के अनुसार इस लेप को शरीर के अंग पर लगाया जाता है। इसके बाद खोदनी सुइयों द्वारा शरीर में चुभोया जाता है, तत्पश्चात गोदे गये शरीर के हिस्से हल्दी तथा अन्य चूर्ण न औषधियां लगायी जाती है। तीन चार दिनों के बाद इस लेप को धो दिया जाता है। आजकल जनजातिय समाज में गोदना का प्रचलन धीरे धीरे खत्म होता जा रहा है।
मिति चित्र: झारखण्ड की जनजातियाँ पर्व त्योहार तथा विवाह के पावन अवसर पर अपने घरों

की सफाई करने के साथ दीवारों पर विभिन्न प्रकार के चित्र भी बनाती है। इसके लिए प्रायः काली मिटटी, सफेद मिटटी, पीली मिटटी तथा गेरू प्रयोग किये जाते है। ये चित्रकारियों प्रायः महिलाओं द्वारा ही अंकित की जाती है, जिन्हें कभी-कभी चित्रकला में निपुण पुरुष भी सहयोग करते है। ये चित्रकारियां प्रायः माधे, सरहुल, सोहराय, बन्धन इत्यादि पर्व त्योहार के अवसर पर विभिन्न प्रकार के फूल, फल, पशु, पक्षी, पौधे, गोत्र चिन्ह इत्यादि के रूप में चित्रित किये जाते है। भिति चित्रकला में संथाल जनजाति, ज्यादा निपुण होती है। हो जनजाति माधे पर्व के अवसर पर अपने घर की दिवारों पर बाघ, शिकार इत्यादि से संबंधित चित्र अंकित करती है। मुंण्डा जनजाति के बीच कृषि यंत्र के चित्र दिवारों पर बनाने की परम्परा रही है। सवर जनजाति के बीच भिति चित्र के रूप में गोत्र चिन्ह, कृषि कार्य, शिकार इत्यादि से जुडे चित्र बनाने का प्रचलन रहा है।

अल्पना चित्र: झारखण्ड की जनजातियों के बीच भितिचित्र के अलावे अल्पना चित्र बनाने की

परम्परा रही है। पर्व त्योहार तथा विवाह के पुनीत अवसर पर धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करने हेतु चावल का चूर्ण, हल्दी, सिन्दूर इत्यादि से विभिन्न प्रकार की अल्पनाये रेखाचित्र के माध्यम से बनाये जाते है। प्रायः अल्पना के ये चित्र अर्द्ध वृताकार, चौकोर, बहुकोणीय, पंखुडी युक्त, गोलाकार इत्यादि विभिन्न आकृतियों में बनाये जाते है। अल्पना बनाने के बाद पाहन, बैगा इत्यादि पुजारी संबंधित देवी देवताओं का आहान का मंत्रोचारण करते है। संथाल द्वारा बनाये गये कुछ अल्पनाओं की आकृति मोहनजोदड़ो (सिंध) तथा हरप्पा (पंजाब) की सभ्यता के दौरान प्रयोग में लाये जाने वाले वर्णमाला से मेल खाती है, जिसके आधार पर संथाल जनजाति को सिन्धु घाटी सभ्यता का निवासी माना जाता है।

उरांव जनजाति द्वारा शादी के अवसर पर 'डंडा कटा' नामक अल्पना बनायी जाती है। मुंण्डा जनजाति द्वारा पूजा स्थल एवं मंडवा में अनेक ज्यामितिक रेखाओं से परिरूप खींच कर पाहन द्वारा अल्पनाएं बनायी जाती है। बिरहोर जनजाति द्वारा भी पूजा के अवसर पर वर्गाकार अल्पना बनायी जाती है। इन अल्पनाओं के बनाने का मुख्य उद्देश्य देवी देवताओं की पूजा के साथ साथ दुष्ट प्रेत्माओं से बचाव करना भी होता है।

प्रतीक चित्र : झारखण्ड के जनजातीय समाज में पूजा-अर्चना के अवसर पर अनेक प्रकार के प्रतीक चित्र भी जमीन पर, झंडा के रूप में काष्ठ आकृतियाँ निर्मित कर उनकी उपासना करने की प्रथा रही है। उराँव जनजाति मुड़मा जतरा के अवसर पर विभिन्न प्रकार की कष्ठ कृतियाँ, जो उनके गोत्र चिन्ह होते है प्रदर्शित किये जाते है। बिरहोर जनजाति बुरू बोंगा, दुधा भाई हनुमान वीर इत्यादि का प्रतीक बनाकर अराधना करती है।

लोकगीत

नृत्य, गीत तथा वाद्य ध्वनि झारखण्ड के जनजातीय लोक संगीत के अभिन्न अंग है। एक झारखण्डी लोकोक्ति के अनुसार चलना ही नृत्य है तथा बोलना ही संगीत। जनजातीय गीत विशेष प्रकार के रोगों में पगे होते है तथा विशिष्ट नृत्य के साथ जुडे होते है। झारखण्ड के जनजातीय नृत्य विशेष अवसरों या ऋतुओं के अनुसार आयोजित किये जाते है। जनजातीय लोक गीतों से नृत्य प्रेरित होते है। वाद्यस्वरों के अभाव में जनजातीय नृत्यों की कल्पना नहीं की जा सकती। झारखण्ड के जनजातीय समाज में अनेक प्रकार के लोक गीत गाये जाते है जैसे सामान्य गीत, संस्कार, गीत पर्व गीत, नृत्य गीत, विवाह गीत, ऋतु गीत इत्यादि। इन लोकगीतों में श्रृंगार, भक्ति, प्रकृति, वात्सल्य शौर्य, करूणा तथा हास्य का समावेश होता है। ये लोकगीत जनजातीय श्रम से प्रस्फुटित होते है। चक्की तथा ढेकी चलाते समय, धान रोपनी तथा फसलों की कटनी के अवसर पर भी ये लोकगीत सस्वर गाये जाते है। इसमें से कुछ गीत मात्र पुरुषों के लिए तो कुछ गीत महिला मात्र के लिए होते है, जबकि कुछ गीत महिला-पुरुष दोनों के लिए भी होते है। लाहर, डमकच, अगनई, झांझाइन, विवाह गीत इत्यादि जनानी गीत होते है, जबकि झूमर गीत जननी तथा मर्दानी दोनों होते है। उरांव जनजाति के बीच लोकगीतों का अपार भंडार है, क्योंकि इस जनजाति के लोग बेहत गीत

के बेहद प्रेमी होते है। मुंण्डा उच्च कोटि के संगीत प्रेमी होते है। वे भावुक तथा मीठे स्वर के धनी होते है। मुण्डा महिलाओं के कंठ स्वर मधुर तथा सुरीले होते है वे नाच गान में पटु होते है। संथाल जनजाति नाच गान के बडे ही शौकीन होते है। हो महिलाये छाते को कमर से बांधकर नाचने की कला में माहिर होती है।

झारखण्ड के जनजातीय गीत जनजातीय संस्कृति के सम्यक दर्पण होते है, जिसके अन्तर्गत जीवन में घटित हर्ष-विवाद, संयोग-वियोग, घात प्रतिघात, आशा-निराशा, हास्य-व्यंग इत्यादि के कर्णप्रिय शब्द पिरोये गये होते है। कला तथा भाव पक्ष की दृष्टि में इन गीतों की अपनी विशिष्टतायें है।

जदूर, सरहूल, करम, झुमर, डांइडधरा, खेमरा, झिंगफुलिया, सोहराय, डमकच, चाली, अंगनई, इत्यादि झारखण्ड की जनजातियों के प्रमुख गीत है। संथाल जनजाति के मुख्य गीत दोड, लागडे, सोहराय, मतवार, मिनसार, दसाय, बाहा, रिमा इत्यादि है। हो जनजाति के प्रमुख गीत बा, हैरा, होन, जोमनाया, माधे इत्यादि है। हो जनजाति के बीच माघी पर्व के अवसर पर गाया जाने वाला माघी राग प्रेमोत्पादक होते है। उरांव जनजाति के गीतों की एक अलग पहचान होती है जिसमें अलग किस्म के राग, लय तथा ताल होते है। खद्दी, करम, जदूरा, झूमर, जितिया इत्यादि इनके प्रमुख गीत होते है। झारखण्ड के सभी जनजातियों के बीच लोकगीत का प्रचलन रहा है।

निष्कर्ष :-

आज झारखण्ड की परम्परागत लोक कला एवं लोकगीत पर आधुनिकता का प्रभाव पड़ा है। जनजातीय वाययंत्र पर ईसाईयों एवं आधुनिकता के प्रभाव के कारण तबला, ड्रम, बैंजो, गितार इत्यादि से विस्थापित होने लगे है। झारखण्ड को जनजातियों अब व्यावसायिक तौर पर पैसे अर्जित करने के लिए भी नाच गान करने लगे है। झारखण्ड के जनजातियों में स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से भी जनजातीय कला को बढावा दिया जा रहा है। स्वयं सहायता समूह परम्परागत जनजातिय वस्त्र तथा अन्य कलाकृतियों को पुनर्जीवित करने में अहम, भूमिका, निभा रही है। इन दिनों झारखण्ड को जनजातियों प्रशिक्षण प्राप्त कर बेंत, लाह, पेपर मैसी, सिल्वर ज्वेलरी, तसर सिल्क इत्यादि शिल्पकला को अंजाम दे रही है। जो कलात्मकता की दृष्टि से बेजोड है। यदि झारखण्ड की जनजातीय कलाओं में घर करती परिवर्तनों पर दृष्टिपात करें तो निश्चित रूप से इन कलाओं में आधुनिकता की ओर बढती प्रवृति दृष्टिगोचर होती है। किन्तु यह बदलाव जनजातीय कला के परमपरागत स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए दिखाई पड़ते है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, उमेश कुमार 2009 "झारखण्ड का जनजातीय समाज", सुबोध ग्रन्थ माला, रांची, पृ०-243-245 |
2. 2. गुप्ता, रमणिका (सं०) 2009, "आदिवासी स्वर और नई शताब्दी" वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली। पृ० 72।

3. उपाध्याय, विजय शंकर एवं पाण्डेय गया 2000, "विकासात्मक मानव विज्ञान" मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृ० 109

4. पाण्डेय, गया 2007, "भारतीय जनजातीय संस्कृति", कसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली पृ० 278

5. शर्मा विमला चरण एवं विक्रम क्रीति 2006, "झारखण्ड की जनजातियाँ" क्राउन पब्लिकेशन रांची।